इकाई–२

भक्तिकाल की परिस्थितियाँ–प्रवृत्तियाँ, ज्ञानाश्रयी शाखा के कवि और काव्य

प्र. ७. ★ भक्तिकालीन साहित्य के परिवेश पर प्रकाश डालिए ।

★ भक्ति–आंदोलन की पृष्ठभूमि स्पष्ट करते हुए भक्तिकालीन परिस्थितियों की चर्चा कीजिए ।

★ भक्तिकाल के उद्‌भव की प्रेरक परिस्थितियों का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

★ भक्तिकालीन साहित्य का उद्‌भव किन–किन परिस्थितियों में हुआ समझाइए ।

★ भक्तिकाल के आविर्भाव में कारणभूत–प्रमुख परिस्थितियों की चर्चा कीजिए ।

★ भक्तिकालीन राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों पर प्रकाश डालिए ।

★ भक्तिकाल की परिस्थितियों की चर्चा करते हुए इस काल की प्रमुख प्रवृत्तियों या विशेषताओं का परिचय दीजिए ।

उत्तर : ७.

(रूपरेखा : (१) पूर्वभूमिका (२) भक्ति–आंदोलन (३) भक्तिकालीन राजनीतिक परिस्थितियाँ (४) भक्तिकाल की सामाजिक परिस्थितियाँ (५) भक्तिकाल की सांस्कृतिक परिस्थितियाँ (६) भक्तिकाल की प्रमुख प्रवृत्तियाँ (७) उपसंहार ।)

(१) पूर्वभूमिका

भक्ति त्रिभुवन की विभूति है । परमेश्वर में परम अनुरक्ति का नाम भक्ति है। हिन्दी साहित्य का मध्यकाल 'भक्ति–रस का काल' माना जाता है । इस युग में भक्ति–साहित्य का जो विकास हुआ, वह किसी भी युग में नहीं हुआ ! भक्ति के दोनों स्वरूपों–सगुण और निर्गुण का विस्तृत परिचय हमें इस युग में मिलता है । इस युग में जितने महान संत–भक्त हुए, उतने शायद ही किसी युग में हुए हों । यह इतिहास का अपूर्व युग है ।

(२) भक्ति-आंदोलन : भक्ति का उद्गम और विकास (पृष्ठभूमि)

हिन्दी साहित्य के इतिहास को मुख्यत: तीन काल-खण्डों में विभाजित किया गया है - (क) आदिकाल (ख) मध्यकाल और (ग) आधुनिककाल । मध्यकाल का विभाजन दो उपकालखण्डों में किया गया है - (अ) पूर्व मध्यकाल तथा (आ) उत्तर मध्यकाल । पूर्व-मध्यकाल को 'भक्तिकाल' तथा उत्तर मध्यकाल को 'रीतिकाल' कहते हैं । भक्तिकाल का उद्भव भक्ति-आंदोलन से हुआ है ।

ईसा की १४वीं - १५वीं सदी में समस्त भारत में भक्ति की एक लहर अचानक प्रकट हो गई थी । जार्ज ग्रियर्सन ने इसके प्रति आश्चर्य का भाव व्यक्त करते हुए लिखा है - 'बिजली की चमक के समान अचानक इस समस्त पुराने धार्मिक मतों के अंधकार के ऊपर एक नई बात दिखाई दी ।... कोई भी इसके प्रादुर्भाव का कारण निश्चय नहीं कर सकता ।' पश्चिम तथा पूर्व के इतिहासकारों तथा आलोचकों ने इसके प्रेरणास्त्रोत पर भिन्न-भिन्न दृष्टियों से विचार किया है । इसके मुख्य चार मत हैं :

(क) पाश्चात्य विद्वानों का मानना है कि भारतीय भक्ति ईसाइयों की देन है ।

(ख) कुछ भारतीय मुस्लिम विद्वान-जैसे कि हूमायुँ-कबीर, डो. आबिद हुसैन, डो. ताराचंद आदि ने इस आंदोलन को मुस्लिम संस्कृति के संपर्क की देन बताया है ।

(ग) हिन्दी-साहित्य के कुछ इतिहासकारों ने भक्ति-आंदोलन को पराजित मनोवृत्ति का परिणाम माना है । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, बाबू गुलाबराय आदि का यही मंतव्य है ।

(घ) कुछ विद्वानों ने इस आंदोलन को दक्षिण के वैष्णव भक्तों की देन माना है। इसके संबंध में एक उक्ति भी प्रसिद्ध है :

'भक्ति द्राविड़ उपजी लाये रामानंद ।
परगट किया कबीर ने सप्तदीप नवखंड ॥'

इस कथन के अनुसार भक्ति का आविर्भाव द्राविड़ अर्थात् दक्षिण भारत में हुआ था । नई खोजों के अनुसार मोहनजोदड़ो और हड़प्पा के द्राविड़ों से भी इस भक्ति का संबंध जोड़ा गया है ।

इस प्रकार भवित-आंदोलन के बारे में अनेक मंतव्य हैं । भक्ति का उद्गम और विकास भवित-आंदोलन के साथ ही हुआ है ।

(३) भक्तिकाल की राजनीतिक परिस्थितियाँ

भक्तिकाल के पूर्वार्द्ध में दिल्ली पर तुगलक एवं लोधी वंश के मुसलमानों ने शासन किया और उत्तरार्द्ध में मुगल वंश के बाबर, हुमायूँ, अकबर, जहाँगीर और शाहजहाँ ने मुहम्मद गोरी द्वारा भारत के विजित प्रदेशों पर तुर्कों की सल्तनत स्थापित की थी ।

इस प्रकार राजनीतिक दृष्टि से पूर्व-मध्यकाल अथवा भक्तिकाल का आरंभ दिल्ली के सुलतान मुहम्मद बिन तुगलक के शासनकाल में हुआ था । इसके बाद दिल्ली पर सैयद वंश का शासन स्थापित हुआ, किन्तु इस वंश के किसी सुलतान ने राजकीय स्थिरता का विशेष प्रयास नहीं किया और राज-सत्ता लोदी-वंश के हाथ में चली गयी। इस वंश के अंतिम सुलतान इब्राहिम लोदी (१४८७-१५२६)ने मुगलों के साथ भीषण युद्ध किया, किन्तु अंत में वह हार गया, उसके शासन-काल में ही मालवा, गुजरात, बंगाल आदि राज्य स्वतंत्र हो चुके थे ।

१५वीं शताब्दी के मध्यभाग में पठानों ने दिल्ली पर कब्जा कर लिया और बिहार में भी उन्होंने अपना प्रभाव जमाया, परंतु भारत में पठान-साम्राज्य की स्थापना वे कर पाये । १६ शताब्दी के मध्य में बाबर ने दिल्ली पर आक्रमण करके मुगल सल्तनत की नींव डाली । बाबर के बाद उसका पुत्र हुमायूँ दिल्ली के सिंहासन पर आरूढ़ हुआ पर वह शेरशाह सूरी से पराजित हो गया । कुछ समय तक सूरी-साम्राज्य का शासन चलता रहा । उसके बाद बादशाह अकबर ने दिल्ली पर आक्रमण करके मुगल साम्राज्य की पुनः प्रतिष्ठा की ।

उपर्युक्त विवरण से हमें पता चलता है कि भक्तिकाल में राजनीतिक परिस्थितियाँ संतोषजनक नहीं थीं, फिर भी भक्त कवियों ने राज्याश्रय से मुक्त रहकर भक्ति-काव्य की रचना की । सम्राट अकबर ने भक्त कवि कुंभनदास को जब सीकरी आने का निमंत्रण दिया, तब उन्होंने विरक्त भाव से सम्राट सम्मुख उपस्थित होकर कहा था :

'भक्तन को कहा सीकरी सौं काम ।
आवत जात पन्हैया टूटी बिसरी गयो हरिनाम ॥'

इस प्रकार, भक्तिकाल की राजनीतिक परिस्थितियाँ अस्थिर थीं, फिर भी भक्त कवि अपने आराध्य के प्रति अनुरक्त थे । अतः भक्ति साहित्य को निराशामय राजनीतिक परिस्थितियों की उपज कहना भ्रामक है । इस युग के मुस्लिम शासकों ने हिन्दी जनता पर महान् अत्याचार किये, किन्तु वे परस्पर भी लड़ते रहे ।

(४) भक्तिकाल की सामाजिक परिस्थितियाँ

भक्ति युग में सामाजिक परिस्थितियों में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुआ। हिन्दु-मुस्लिम संस्कृति में आदान-प्रदान हुआ। एक ही परिवार के व्यक्ति कुछ हिन्दु बने रहे और कुछ मुसलमान बन गए। उस समय तक हिन्दु-मुसलमानों में परस्पर विवाह हो जाते थे किन्तु शनैः-शनैः जाति-पाँति के बन्धन कठोर होते जा रहे थे।

इस युग में हिन्दुओं में ऊँच-नीच का भेद आया, पर्दे तथा बालविवाह का प्रचलन हुआ। कुछ मुस्लिम शासकों में रूप-लिप्सा एवं काम-पिपासा का आधिक्य था। वे हिन्दुओं के साथ कठोर व्यवहार करते थे। अलाउद्दीन उसका प्रत्यक्ष उदाहरण है। मुगल शासक अधिक चतुर और दूरदर्शी थे। उन्होंने अपने शासन को दृढ़ करने के लिए धार्मिक पक्षपात को दूर कर हिन्दुओं को साम्राज्य के ऊँचे-ऊँचे पदों पर नियुक्त किया, किन्तु औरंगजेब इस परम्परा को बनाए न रख सका और मुगल साम्राज्य के पतन का कारण बना।

आचार्य परशुराम चतुर्वेदी के शब्दों में "दैनिक जीवन, रीति-रस्म, रहन-सहन, पर्व-त्यौहार आदि की दृष्टि से तत्कालीन समाज-सुविधा सम्पन्न और असुविधा ग्रस्त इन दो वर्गों में विभक्त थी।

प्रथम वर्ग में राजा-महाराजा सुल्तान, अमीर, सामन्त और सेठ-साहूकार आते थे जिनमें मनमाने ढंग से वैभव-प्रदर्शन की उल्लासपूर्ण प्रवृत्ति पाई जाती थी। द्वितीय वर्ग में किसान, मजदूर, सैनिक राज-कर्मचारी और घरेलू उद्योग-धन्धों में लगी सामान्य जनता थी जो प्रथा-परम्परा का पालन कर सन्तोष की साँस ले लिया करती थी। गोस्वामी तुलसीदास कृत 'कवितावली' की निम्नलिखित पंक्तियों से तत्कालीन स्थिति का स्पष्ट परिचय मिलता है :

"खेती न किसान को, भिखारी को न भीख बलि।
बनिक को बनिज न चाकर को चाकरी॥"

इस प्रकार सामन्ती संस्कृति में समाज शोषक और शोषित वर्ग में बँट गया। भक्तिकालीन कवियों ने समाज के आर्थिक पहलू का अधिक निरूपण नहीं किया। उनका ध्यान धार्मिक और सामाजिक ऊँच-नीच के भेद-भाव पर गया, क्योंकि वे स्वयं इन समानताओं से पीड़ित थे। कबीरदास ने निम्न वर्ग में व्याप्त दीनता की भावना को दूर करते उन्हें सहज अक्खड़ता का आध्यात्मिक उपदेश दिया।

(५) भक्तिकाल की धार्मिक-सांस्कृतिक परिस्थितियाँ

भक्तिकाल के प्रारम्भ में भारतीय समाज संघर्षमय धार्मिक चेतना की परिस्थितियों से गुजर रहा था । उस युग में एक ओर वैदिक सम्प्रदाय था तो दूसरी ओर इनका विरोधी नाथ-सिद्ध-सम्प्रदाय ब्राह्मण-धर्म का विरोध कर रहा था । बौद्ध-धर्म हीनयान और महायान दो वर्गों में बँट चुका था ।

भक्ति युग में वैष्णव धर्म ने भक्ति को अपना प्रधान साधन बनाकर लोकप्रियता प्राप्त की । उपासना को भक्ति का यह रूप शुद्ध ज्ञान के सूक्ष्म रूप की तुलना में स्थूल एवं ग्राह्य था । इसमें वैयक्तिक साधना लोक-कल्याण को लक्ष्य बनाकर चली।

सांस्कृतिक दृष्टि से भक्तिकाल में विभिन्न सांस्कृतियों का सुंदर समन्वय हुआ है । आचार्य परशुराम चतुर्वेदी के मतानुसार "सांस्कृतिक चेतना की सर्वश्रेष्ठ अभिव्यक्ति सार्वभौम सत्य के आधार पर प्रतिष्ठित धार्मिक भावना और दार्शनिक चिंताधारा है ।"

मध्ययुग में हिन्दु-समाज के दो वर्ग हमारे सामने आते हैं - एक शास्त्रों का समर्थक वर्ग हुआ दूसरा परंपरागत मान्यताओं का संतोषक वर्ग । दूसरे वर्ग के लोग बाह्याचारों को विशेष महत्त्व देते थे । मध्ययुगीन संतों ने बाह्याचारों का कड़े शब्दों में विरोध किया है । कबीर ने स्पष्ट शब्दों में कहा है :

"माला तो कर में फिरै
जीभ फिरै मुखमांहि ।
मनुवा चहु दिशि फिरै,
यह तो सुमिरन नाहिं ॥"

इस युग के भक्ति-साहित्य पर निम्नलिखित चार वैष्णव संप्रदायों का प्रभाव विशेष रूप में दृष्टिगोचर होता है ।

	संप्रदाय		**संस्थापक/प्रवर्तक**
(१)	श्री संप्रदाय	:	रामानुज और रामानंद ।
(२)	ब्रह्म संप्रदाय	:	भध्वाचार्य ।
(३)	हंस संप्रदाय	:	निम्बार्काचार्य ।
(४)	रूद्र संप्रदाय	:	वल्लभाचार्य ।

उपर्युक्त चारों संप्रदायों के दार्शनिक सिद्धांत अनुक्रम से 'विशिष्टाद्वैत', 'द्वैतमत', 'द्वैताद्वैत' और 'शुद्धाद्वैत' नाम से विश्रुत हैं ।

इससे देखा जा सकता है कि भवितकाल में धर्म और संस्कृति का विशेष विकास हुआ है ।

(६) भक्तिकाल की प्रवृत्तियाँ अथवा विशेषताएँ

भक्तिपरक समान भावनाओं के आधार पर ही १४वीं श. से. १७वीं श. के मध्य भाग तक के हिन्दी साहित्य को 'भक्ति-साहित्य' की संज्ञा दी गई है । अब हम भक्तिकालीन-काव्य की प्रमुख समान भावनाओं का स्वरूप विवेचन इस काल के कवियों की रचनाओं के आधार पर करेंगे । भक्ति-साहित्य में पाई जाने वाली समान भावनाएँ ये हैं -

(१) भक्ति-भावना की प्रधानता :

भक्ति-भावना का प्राधान्य पाँचों सम्प्रदायों में (ज्ञानाश्रयी शाखा, प्रेममार्गी शाखा, रामभक्ति शाखा, कृष्ण-भक्ति शाखा और जैन भक्ति शाखा) में रहा ।

कबीरदास ने निर्गुण ईश्वर के उपासक होते हुए भी, भक्ति को प्रधानता दी है । उनका कथन है कि बिना भक्ति के ज्ञान की प्राप्ति नहीं हो सकती । इसलिए ज्ञान-प्राप्ति के लिए भक्ति का होना आवश्यक है और ज्ञान के द्वारा ईश्वर की प्राप्ति होती है । देखिए -

'हरि भक्ति जाने बिना, बूढ़ि मुआ संसार ।'

इसी प्रकार प्रेममार्गी भक्तों का प्रेमभक्ति का ही रूप है, और भक्त तो भक्त है ही । जायसी ने पद्मावत में कहा है -

"नवों खण्ड नवों पौरी, उनें तहें वस्त्र केवारा ।
चारी बसेरे सौ चढ़ै, सत सौं उतरे पार ॥"

इसमें जायसी ने सूफी सिद्धान्त की चारों अवस्थाओं (शरीयत, तरीकत, हकीकत और मारिफ़त) को ईश्वर-भक्ति का साधन माना है ।

राम भक्त तथा कृष्ण-भक्त कवियों ने तो भक्ति भावना को प्रधानता दी है, चाहे जिस पद को, चाहे जिस चौपाई को उठा लीजिए, वह भगवद्भक्ति से ओत-प्रोत होगी हम देखते हैं कि राम-भक्ति शाखा और कृष्ण-भक्ति शाखा का आधार ही भगवद्भक्ति है ।

सूर ने जनता का दुःख दूर करने के लिए तथा भक्ति की ओर अग्रसर करने के लिए कृष्ण का लोक-रंजनकारी रूप उपस्थित किया, जिसमें नवीनता तथा आकर्षण मिला । दूसरी ओर तुलसी ने आर्य-सभ्यता को जनता के सम्मुख उपस्थित किया जिस पर आर्यजन अभिमान करते थे । 'राम सत्यव्रत धरमरत सब कर सीलु सनेहु'... इत्यादि ।

(२) नाम का महत्त्व :

जप, कीर्तन, भजन आदि संतों, सूफियों और सगुणोपासक कवियों में समान रूप से दिखाई पड़ते हैं । सूफियों और कृष्ण-भक्त कवियों में कीर्तन की प्रधानता

है । तुलसी ने भी राम के नाम को राम से बड़ा माना है । नाम में निर्गुण-सगुण दोनों का समन्वय हो जाता है । देखिए -

"निर्गुण की सेवा करो, सगुण को करो ध्यान ।
निर्गुण सगुण से परे, तहाँ हमारा ध्यान ॥"

कबीरदास ईश्वर को निर्गुण से परे मानते हैं । उनका कथन है कि उसकी प्राप्ति भक्ति और योग के समन्वय के द्वारा हो सकती है । उसका नाम 'अक्षय पुरुष' या 'सत्पुरुष' है । देखिए :

"मेरा साहब एक है, दूजा कहा न जाय ।
साहिब दूजा जो कहूँ, साहब खरा रिसाय ।"

इसी प्रकार हम देखते हैं कि प्रेममार्गी कवि जायसी तथा उनके अनुयायियों ने भी नाम की महिमा को बताया है । देखिए -

"सुमिरों आदि एक करतारु ।
जेहि जिव दीन्ह कीन्ह संसारु ॥"

तुलसी ने भी नाम और कीर्तन की महिमा को बताया है । देखिए -

"अगुन सगुन दुइ ब्रह्म स्वरूपा । अकथ अगाध अनादि अनूपा ।
मोरे मत बढ़ ना दुहूँते । किये जेहि प्रभु निज बस निज बूते ॥"

इस प्रकार सभी भक्त-कवि नाम को महत्त्व देते हैं ।

(३) गुरु की महिमा :

कबीरदास ने तो गुरु को भगवान से भी बड़ा कहा है । देखिए -

"गुरु गोविन्द दोऊ खड़े, काके लागों पाये ।
बलिहारी वा गुरु की, जिन गोविन्द दिया मिलाय ।"

कबीरदास ने स्थान-स्थान पर गुरु की महिमा का वर्णन किया है । जितनी प्रधानता ईश्वर की नहीं मानी गई उतनी गुरु की मानी गई है, क्योंकि गुरु ही संसार-सागर से पार कराने वाली शक्ति है । गुरु ही ईश्वर के दर्शन करा सकता है ।

जायसी ने भी गुरु की महिमा का खूब प्रदर्शन किया है -

"तन चितउर मन राजा कीन्हा, हिय सिंघल बुद्धि पदमिनि चीन्हा ।
गुरु सूआ जेई पन्थ दिखावा, बिनु गुरु जगत का निरगुन पावा ॥"

गोस्वामी तुलसीदास ने गुरु की वन्दना इन शब्दों में की है -

"बन्दौ गुरु पद कंज, कृपा सिंधु नररूप हरि ।
महामोह तम पुंज, जासु वचन रवि कर निकरि ॥"

गोस्वामी तुलसीदास ने मानस के आरम्भ में गुरु महिमा का खूब वर्णन किया है। कृष्ण-भक्त शिरोमणि महात्मा सूरदासजी ने भी अपने गुरु वल्लभाचार्यजी की महिमा का वर्णन "सूरसागर" में किया है । देखिए –

'श्री वल्लभ नखचन्द्र छटा बिनु, सब जग माँहि अँधेरो ।'

इस प्रकार हम देखते हैं कि निर्गुण और सगुण – दोनों धाराओं के संत तथा भक्त कवियों में गुरु के प्रति अपार भक्ति थी ।

(४) अहंकार का त्याग :

अहंकार का त्याग भक्ति का दूसरा रूप माना गया है । जब तक मनुष्य के हृदय में अहंकार विद्यमान रहेगा, तब तक उसे सच्ची भक्ति की प्राप्ति नहीं होगी जैसा कि हम कबीरदास के एक दोहे में देखते हैं –

"जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि हैं मैं नाहिं ।
प्रेम गली अति सांकरी, ता में दो न समाहिं ॥"

भक्त चाहे निर्गुणवादी हो, चाहे सगुणवादी, उसे अभिमान अवश्य त्यागना पड़ता है । बिना उसके त्यागे उसे भक्ति नहीं मिल सकती । जब हम सूर तथा तुलसी के काव्य का अध्ययन करते हैं, तब हम उनको भगवान् के प्रति कहते पाते हैं कि -

'प्रभु हौं सब पतितन को टीकौ',
'प्रभु अबकी राखि लेउ लाज हमारी'... इत्यादि ।

इससे देखा जा सकता है कि भक्त नम्र होता है ।

(५) सदाचार की आवश्यकता :

भगवान निर्मल हृदय वाले जन को ही चाहते हैं, रामचरितमानस में स्वयं भगवान ने अपने श्रीमुख से कहा है :

'निर्मल मन सोई जन मोहि भावा..... ।'

तुलसी ने शील-सदाचार पर विशेष बल दिया है वे कहते हैं :

'जो निज मन परिहै़ बिकारा ।
तो कत द्वै जनित संसृति-दुख संसय सोक अपारा ॥'

इसी प्रकार आडम्बर का खण्डन, सादा-सरल जीवन में विश्वास इत्यादि कई ऐसी भावनाएँ हैं जो प्रायः चारों शाखाओं के कवियों की रचनाओं में समान रूप से पाई जाती हैं ।

इससे कहा जा सकता है कि भक्तिकाल हिन्दी साहित्य के इतिहास का एक विशिष्ट युग है ।

(७) उपसंहार

भारत में भक्ति की सरिता वैदिक काल से ही प्रवाहित होती चली आ रही है। हिन्दी-साहित्य में भी वही भक्ति-सरिता पुनः सजल-सफल रूप में मध्यकाल में दृष्टिगोचर होती है। इस काल में भक्ति का जो आन्दोलन उठा, वह न तो ईसाई-धर्म और न इस्लाम-धर्म का प्रतिफलन है, न वह हिन्दु-जाति की पराजित मनोवृत्ति का परिणाम है। वह तो वस्तुतः **सांस्कृतिक पुनरुत्थान** है। इस युग की राजनीति, सामाजिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों का अवलोकन करने से हम जान सकते हैं कि इस युग की परिस्थितियाँ पूर्ववर्ती युग (आदिकाल) तथा परवर्तीयुग (रीतिकाल) से बिलकुल भिन्न है। इस युग के साहित्य की रचना में राजा-महाराजाओं के गुणगान नहीं हुआ, किन्तु आत्मविकास और परमात्म-मिलन का चित्रण हुआ है।

प्र. ८. ★ भक्तिकाल की मुख्य तथा गौण (उप) काव्य-धाराओं का परिचय दीजिए।

★ भक्तिकालीन काव्य-धाराओं का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

★ भक्तिकालीन निर्गुण और सगुण काव्य-धारा का संक्षेप में परिचय दीजिए।

★ भक्तिकाल की निर्गुण काव्य-धारा और सगुण काव्य-धारा की तुलना कीजिए। साम्य-वैषम्य पर प्रकाश डालिए।

★ भक्तिकाल को हिन्दी साहित्य के इतिहास का स्वर्णयुग क्यों कहा जाता है ? तर्क संगत उत्तर दीजिए।

★ "भक्तिकाल हिन्दी साहित्य का स्वर्णयुग है।" सिद्ध कीजिए।

उत्तर : ८.

(**रूपरेखा :** (१) पूर्वभूमिका (२) भक्तिकाल की मुख्य काव्य-धाराएँ (३) सगुण-निर्गुण धाराओं की तुलना (४) भक्ति-काव्य की उपधाराएँ (५) भक्तिकालः हिन्दी साहित्य का स्वर्ण-युग (६) उपसंहार ।)

(१) पूर्वभूमिका

भक्ति भारतवर्ष की अन्यतम विशेषता है। भक्ति की परंपरा भारत में वैदिक-युग से चली आ रही है। हिन्दी साहित्य के इतिहास का पूर्व-मध्यकाल 'भक्तिकाल' कहलाता है। इस काल में हिन्दी साहित्य में भक्ति का अपूर्व उत्कर्ष दिखायी देता है। भक्ति की जो विभिन्न धाराएँ इस युग में प्रवाहित हुई हैं, उनका अध्ययन आवश्यक है

(२) भक्तिकाल की मुख्य दो काव्य-धाराएँ

१४वीं शताब्दी के बाद जो हिन्दी का साहित्य रचा गया, उसकी मूल प्रेरणा भक्ति ही रही। यहीं से एक नवीन मोड़ की सूचना मिलती है। यह साहित्य भक्ति का साहित्य है। इसमें आडम्बर-विहीन एक सुचितापूर्ण सरल जीवन की झाँकी है। बाबू गुलाबराय का मत है कि मनोवैज्ञानिक तथ्य के अनुसार हार की मनोवृत्ति में दो ही बातें सम्भव हैं, या तो अपनी आध्यात्मिक श्रेष्ठता दिखाना या भोग-विलास में पड़कर हार को भूल जाना। भक्तिकाल में लोगों में प्रथम प्रकार की प्रवृत्ति पाई जाती है।

भक्तिकाल की प्रमुख काव्य-धाराओं का अध्ययन करने के लिए सबसे पहले उसे हम दो धाराओं में विभाजित कर सकते हैं :

(अ) निर्गुण भक्ति-धारा और

(आ) सगुण भक्ति-धारा

(३) सगुण-निर्गुण धाराओं की तुलना-साम्य-वैषम्य (विशेषताएँ)

इन दोनों काव्य-धाराओं में जो साम्य और वैषम्य मिलता है, उसका परिचय संक्षेप में इस प्रकार दिया जा सकता है।

आराध्य देव के उपासना-भेद तथा उपासक की प्रकृति के अनुसार भक्ति की गंगा मुख्य दो धाराओं में बहती है - एक सगुण भक्ति-धारा और दूसरी निर्गुण भक्ति-धारा इन दो धाराओं के अनुसार भक्त भी दो प्रकार के होते हैं - एक सगुण ब्रह्म की भक्ति करनेवाले और दूसरे निर्गुण ब्रह्म की आराधना करनेवाले। दोनों धाराओं में साम्य कम है, विषमताएँ अधिक हैं। सर्वप्रथम साम्य पर विचार करें।

(अ) साम्य :

सगुण और निर्गुण भक्ति-धाराओं में तात्त्विक दृष्टि से कोई भेद नहीं है। दोनों में साम्य इस प्रकार है :

(१) दोनों भक्ति-धाराओं में ब्रह्म या परम तत्त्व की प्राप्ति मुख्य लक्ष्य है।

(२) दोनों भक्ति-धाराओं में ब्रह्म की उपासना होती है। दोनों में गुरु के प्रति पूज्यवाद मिलता है।

(३) दोनों भक्ति-धाराओं में प्रेम को महत्त्व मिला है।

(४) दोनों भक्ति-धाराओं का गुणगान वेदों तथा पुराणों के अनेक ऋषि-मुनियों ने किया है।

इस संबंध में संत तुलसीदास के निम्नलिखित कथन स्मरणीय है :

"सगुनहिं अगुनहिं नहिं कछु भेदा।
गावहिं मुनि पुरान बुध बेदा ॥"

(आ) वैषम्य :

सगुण और निर्गुण भक्ति की काव्य-धाराओं में वैषम्य विशेष दिखायी देता है। कुछ प्रमुख मुद्दे इस प्रकार हैं :

(१) सगुण भक्ति में जहाँ लीलावतार को आराध्य स्वीकार किया गया है, वहाँ निर्गुण भक्ति में ब्रह्मानुभूति को स्थान दिया गया है ।

(२) सगुण भक्ति में जहाँ भगवदनुग्रह का भरोसा होता है, वहाँ निर्गुण भक्ति में आत्मविश्वास का बल रहता है ।

(३) सगुण भक्ति जहाँ बाह्य लालित्य की महिमा से मंडित है, वहाँ निर्गुण भक्ति अन्तःसौंदर्य की गरिमा दीप्त है ।

(४) सगुण भक्ति में स्वकीया तथा परकीया दोनों भावों का समावेश होता है, जबकि निर्गुण भक्ति में प्रायः ऐसे भावों का अभाव रहता है ।

(५) सगुण भक्ति का सामान्य व्यक्ति भी अवलंबन ले सकता है, जबकि निर्गुण भक्ति जनसाधारण के लिए ग्राह्य नहीं हो सकती ।

(६) सगुण भक्त के लिए जहाँ भगवान् का उपर्युक्त धाम भक्त का हृदय है, वहाँ निर्गुण भक्ति के लिए अभेदमूलक दृष्टि द्वारा आत्मसाक्षात्कार का महत्त्व है ।

(७) सगुण भक्ति के उपासक जहाँ वर्ण-व्यवस्था के आलोचक नहीं है, वहाँ निर्गुण भक्त उसके तीव्र विरोधी जान पड़ते हैं ।

इस प्रकार सगुण और निर्गुण भक्तिधाराओं में अनेक दृष्टियों से अंतर होता है।

(४) भक्तिकाव्य की उपधाराएँ

भक्तिकालीन काव्य की निर्गुण-सगुण धाराओं का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि दोनों ही आगे चलकर दो-दो उपधाराओं में विभक्त हो गयी हैं ।

निर्गुण भक्ति-काव्य की दो प्रमुख धाराओं के नाम हैं ।

(१) ज्ञानमार्गी भक्ति-शाखा या संत-काव्य-धारा और

(२) प्रेममार्गी-शाखा या सूफी-काव्य-धारा ।

सगुण भक्ति-काव्य की दो प्रमुख धाराएँ निम्नांकित वर्गों में विभाजित हैं

(१) राम काव्य-धारा और

(२) कृष्ण काव्य-धारा ।

इन चारों उपधाराओं का संक्षिप्त परिचय यहाँ हम दे रहे हैं ।

जैसा कि सगुण और निर्गुण भक्ति-धाराओं के तुलनात्मक विवेचन में बताया गया है, सगुण भक्ति में लीलावतार को आराध्य स्वीकार किया गया है और निर्गुण भक्ति में ब्रह्मानुभूति को स्थान दिया गया है । प्रेम का महत्त्व दोनों धाराओं में पाया जाता है । ब्रह्म की अनुभूति ज्ञान से होती है । ज्ञानीजन ही निर्गुण-निराकार ब्रह्म का साक्षात्कार कर सकता है, इसलिए निर्गुण भक्ति की एक शाखा को 'ज्ञानमार्गी-शाखा' कहा जाता है । कबीर, दादू, मलूकदास आदि संतों ने अद्वैतवादी सिद्धांत के अनुसार उपदेश दिया है और ब्रह्म के निर्गुण रूप पर विशेष बल दिया है, इसलिए इस शाखा को 'संत-मत' भी कहते हैं । कबीर इस शाखा के प्रतिनिधि कवि हैं ।

निर्गुण को आराध्य माननेवाली तथा उसके प्रति प्रेम प्रकट करनेवाली एक अन्य साधना-पद्धति भी भक्तिकाल में दृष्टिगत होती है, जिसे 'प्रेममार्गी शाखा' नाम दिया गया है । चूँकि आराध्य को प्रिय पात्र के रूप में मानकर उसकी महिमा का वर्णन करनेवाली यह विशिष्ट साधना-पद्धति सूफियों में पायी जाती है, इसलिए इस शाखा को 'सूफी मत' भी कहा जाता है । जायसी इस शाखा के प्रमुख कवि हैं ।

सगुण भक्ति में लीलावतार को आराध्य समझा जाता है । भारतीय अवतारवाद में राम और कृष्ण लीलाओं का विशेष महत्त्व है, इसलिए सगुण भक्ति-धारा को भी दो शाखाओं में विभाजित किया जा सकता है - एक राम-भक्ति शाखा और दूसरी कृष्ण-भक्ति शाखा । गोस्वामी तुलसीदास राम-भक्ति शाखा का और महाकवि सूरदास कृष्ण-भक्ति शाखा का प्रतिनिधित्व करते हैं ।

(५) भक्तिकाल : हिन्दी साहित्य का स्वर्णयुग

हिन्दी साहित्य के इतिहास में पूर्व मध्यकाल को 'भक्तिकाल' नाम दिया गया है । इस युग में भक्ति का प्राधान्य रहा है । इस युग के कवि संत और भक्त थे। आदिकाल और रीतिकाल के कवियों के समान इस युग के भक्त कवि राज्याश्रित नहीं थे । उन्होंने किसी राजा-महाराजा के मनोरंजन के लिए काव्य की रचना नहीं की, किन्तु सर्वशक्तिमान, सर्वज्ञ एवं सर्वव्यापक परमेश्वर की प्रसन्नता के लिए उन्होंने काव्य-रचना का प्रयास किया है, इस युग में कुछ ऐसी विशेषताएँ दिखायी देती हैं, जिनके कारण इसे 'हिन्दी साहित्य का स्वर्णयुग' माना जाता है । ये विशेषताएँ इस प्रकार हैं ।

(१) युगनिर्माता कवियों और श्रेष्ठ भक्तों का प्रादुर्भाव :

भक्तिकाल की चारों शाखाओं (ज्ञानमार्गी शाखा, प्रेममार्गी शाखा, रामभक्ति शाखा और कृष्ण-भक्ति शाखा) के प्रतिनिधि कवि - कबीर, जायसी, तुलसी और सूरदास - 'युग-निर्माता कवि' हैं । प्रसिद्ध लोकोक्ति - 'सूर सूर तुलसी शशी...' के अनुसार सूरदास हिन्दी साहित्य के सूर्य और तुलसीदास चन्द्र हैं ।

इन कवियों के अतिरिक्त मीरां, रसखान, नानक, हित हरिवंश आदि अनेक महान कवियों का संबंध भी इसी युग से है । इतने अमर कवि हिन्दी साहित्य के किसी भी युग में नहीं अवतरित हुए । बाबू श्यामसुंदर दास ने इस तथ्य का संकेत करते हुए उचित ही लिखा है :

'जिस युग में कबीर, जायसी, तुलसी, सूर और रससिद्ध कवियों और महात्माओं की दिव्यवाणी उनके अंतःकरण से निकलकर देश के कोने-कोने में फैली थी, उसे साहित्य के इतिहास में सामान्यतः 'भक्तियुग' कहते हैं निश्चय ही यह हिन्दी साहित्य का 'स्वर्णयुग है।''

भक्तिकाल के संत कवि कबीर की साखियाँ, प्रेम की पीर के कवि ज़ायसी का 'पद्मावत', राम के अनन्य उपासक तुलसीदास का 'रामचरित मानस', कृष्ण की अनुपम लीलाओं के गायक सूरदास का 'सूरसागर', मीरां की पदावली, रसखान के सवैये आज भी अमर हैं । इसी कारण भक्तिकालीन काव्य अविस्मरणीय है ।

(२) विविध क्षेत्रों में समन्वय की भावना :

मध्ययुगीन भक्तिकाव्य की एक बड़ी विशेषता, विरोधी परिस्थितियों में समन्वय करके उन्हें जीवन की एकसूत्रता के साथ बाँध देना है । यह समन्वय की भावना बड़ी व्यापक और मार्मिक है। जीवन के सभी क्षेत्रों में - क्या व्यक्तिगत, क्या सामाजिक, क्या धार्मिक, क्या दार्शनिक - यह समन्वय की भावना व्याप्त हैं । कुछ उदाहरण देखिए ।

(३) सामाजिक क्षेत्र में समन्वय :

कबीर ने एक सामान्य भक्ति-मार्ग की स्थापना की, जिसमें 'जाति-पाँति पूछै नहीं कोई, हरि को भजै सो हरि का होई' का समन्यवादी सिद्धान्त मूल में था। सूरदास, तुलसीदास, मीरा तथा अन्य वैष्णव भक्त-कवियों ने भी भगवान के भक्तों में अजामिल, गीध, गणिका, शबरी आदि को शिरोमणि बनाकर इसी समन्वय-सिद्धांत का प्रतिपादन किया है । कबीर ने तो इनसे भी बढ़कर हिन्दू और मुसलमानों का पारस्परिक विद्वेष मिटाकर दोनों को मानवतावाद के धरातल पर मिलाने का सराहनीय प्रयत्न किया है । जैसे –

गुप्त प्रकट है एकै मुद्रा ।
काको कहिए ब्राह्मन-शुद्रा ।

(४) धार्मिक-सांस्कृतिक क्षेत्र में समन्वय :

धार्मिक क्षेत्र में ज्ञान, कर्म और उपासना (भवित) इन तीन तत्त्वों में से एक एक तत्त्व की प्रधानता के आधार पर जो विरोध उठ खड़े हुए थे और लोग एक-

दूसरे को हेय दृष्टि से देखने लगे थे, उसे दूर करने का भक्तिकाव्य का प्रयत्न सराहनीय है। सगुणोपासक तुलसी ज्ञान-भक्ति का एक्य इन शब्दों में व्यक्त करते हैं -

ज्ञानहिं भगतिहिं नहिं कछु भेदा ।

उभय हरहिं भव संभव खेदा ।

(५) दार्शनिक क्षेत्र में समन्वय :

सूफी कवि जायसी ने लौकिक प्रेम के द्वारा अलौकिक प्रेम की व्यंजना की है। जैनभक्ति काव्य में भी रहस्यानुभूति की अभिव्यक्ति हुई है किन्तु -

(६) धार्मिक और दार्शनिक दृष्टि से उत्कर्ष :

किसी भी जाति श्रेष्ठ रचनाएँ उसके धार्मिक विश्वासों में रहती हैं। इसलिए वह साहित्य जो धर्म की ठोस भूमि पर स्थित हो, उस जाति का श्रेष्ठ और अमर साहित्य है। हिन्दी साहित्य के भक्तियुग का साहित्य हमारी जाति के श्रेष्ठ धार्मिक भावनाओं को लेकर चलता है। इस साहित्य में अभिव्यक्त आदर्श हमारे धार्मिक आदर्श है, इसलिए इस साहित्य का हमारे जीवन में आज भी महत्त्व है। आज आदिकाल का और रीतिकाल का साहित्य हमारे जीवन में उतना महत्त्वपूर्ण नहीं है, जितना भक्तियुग का।

भक्तिकाव्य की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उसमें भारतीय संस्कृति और आचार-विचार की पूर्ण रक्षा हुई है। देश में रामानुज, रामानन्द, वल्लभाचार्य, निम्बार्क प्रभृति महात्माओं की शिष्य मण्डलियाँ घूम-घूमकर अपने विचारों का प्रचार कर रही थीं। भक्तिकाल के महान लोकनायक कविशिरोमणि तुलसी ने मर्यादा - पुरुषोत्तम राम के आदर्श चरित्र के द्वारा शंकर के अद्वैत चिन्तन को व्यावहारिक रूप प्रदान किया। राम की प्रिय कथा में शंकर का वेदान्त पूर्ण रूप से गुँथा हुआ है।

ईश्वर अंश जीव अविनाशी। चेतन अमल सहज सुखरासी ।

सो मायाबस भयउ गोसाई । बँधेउ कीर मरकट की नाई ।

लोकनायक तुलसी ने विविध सम्प्रदाय एवं मतों का अपने काव्य में समन्वय किया है। शंकर के अद्वैत, रामानुज के विशिष्टा द्वैत और द्वैत - तीनों मतों को काव्य की सरल भाषा में व्यक्त करके उन्होंने तीनों से परे सहज भक्तिभाव की स्थापना की है -

कोउ कह सत्य, झूँठ कह कोऊ, जगल प्रबल कोउ मानै ।

तुलसीदास परिहरै तीन भ्रम, सो आपन पहिचानै ॥

डो. श्यामसुंदरदास जी ने भक्तियुग के वैष्णव कवियों के महत्त्व की स्थापना करते हुए लिखा है - "हिन्दी काव्य में से यदि वैष्णव कवियों के काव्य को निकाल दिया जाय तो जो बचेगा वह इतना हलका होगा कि हम उस पर किसी प्रकार का गर्व न कर सकेंगे।

इस प्रकार धार्मिक और दार्शनिक दृष्टि से भक्तिकाल का उत्कर्ष पूर्वकालीन साहित्य से सबसे अधिक है । वह अन्य धाराओं के कवियों की अनुभूति से भिन्न है । जायसी ने लिखा है –

''रवि, ससि न खत दिवहिरोहि जाती
रतन पदारथ मानिक मौक्तिक जाती ॥''

इस प्रकार, भक्त-कवियों, तथा सूफी कवियों से समन्वय की पूरी चेष्टा की है।

(७) भावपक्ष और कलापक्ष की उत्कृष्टता :

भक्तिकालीन, रचनाओं में भक्तिभाव का चरम उत्कर्ष देखने को मिलता है। कबीर जैसे निर्गुणोपासक ज्ञानमार्गी कवि ने भी भक्तिभाव का महत्त्व स्वीकार करते हुए कहा है –

'हरि भक्ति जाने बिना बूढ़ि मुआ संसार ।'

इसी प्रकार सहजोबाई ने भी इसी की पुष्टि की है –

'बिना भक्ति थोथे सभी, जोगे जग्य आचार ।'

भक्तिकालीन कवियों ने 'स्वान्तः सुखाय' कविताएँ लिखी हैं। भक्ति के अतिरिक्त शील और सदाचार का निरूपण भी भक्त कवियों ने उत्तम ढंग से किया है । उनकी वाणी में रीतिकालीन कवियों जैसा आडंबर नहीं है । उनका कलापक्ष सरल और सुबोध है । यथा –

'सरल भक्ति किरत विमल सोई आदरहिं सुजान ।'

भक्तिकाल में प्रबन्ध काव्य, मुक्तक काव्य, गीतिकाव्य, कथा – काव्य, सूक्ति काव्य आदि अनेक काव्य रूपों का सृजन हुआ है, इसीलिए कलापक्ष आकर्षक है। इस दृष्टि से काव्य के दोनों पक्षों का जितना विकास भक्तिकाल में दृष्टिगत होता है, इतना अन्य किसी युग में देखने को नहिं मिलता । इसी कारण इस **'हिन्दी साहित्य का स्वर्णयुग'** कहा जाता है ।

(६) उपसंहार

भक्तिकाल मुख्यतः दो धाराओं सगुण भक्ति-काव्यधारा और निर्गुण भक्ति-काव्यधारा में विभक्त है । सगुण भक्तिकाव्य को दो उपधाराओं – रामभक्ति काव्य तथा कृष्णभक्ति काव्य – में बाँटा गया है । इसी प्रकार निर्गुण भक्तिकाव्य की भी दो उपधाराएँ हैं, – संतकाव्य और सूफीकाव्य । इन चारों काव्यधाराएँ भावपक्ष और कलापक्ष की दृष्टि से, धार्मिक, सांस्कृतिक विकास की दृष्टि से तथा समन्वय की दृष्टि से समृद्ध होने के कारण भक्तिकाल को 'हिन्दी साहित्य का स्वर्णयुग' माना गया है।